

एकहि साधे सब सधे*

राजेश कुमार

वर्तमान स्कूली शिक्षा व्यवस्था में शिक्षकों, अभिभावकों और परिणामस्वरूप छात्रों का पूरा ध्यान याद करने पर है। याद करने के इस आग्रह को स्कूली शिक्षा, उच्चतर शिक्षा, तकनीकी शिक्षा और नौकरी के लिए होने वाली प्रतियोगिता परीक्षाओं के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। दूसरी तरफ शिक्षाविद लगातार यह चिंता व्यक्त करते हैं कि बच्चे स्कूलों में सिर्फ याद कर रहे हैं। वो चीजों को न तो समझ रहे हैं और न ही सीख पा रहे हैं। उनके सोचने की गुणवत्ता पर भी सवाल उठाये जा रहे हैं - 'आजकल के बच्चे ठीक से नहीं सोच पाते हैं'। चाहे वह याद करने का आग्रह हो या नहीं सोच-समझ पाने या नहीं सीख पाने की चिंता इन सब में यह मान्यता दिखाई देती है कि ये सारी अलग-अलग मानसिक प्रक्रियाएं हैं। इनमें से कुछ हो सकती हैं और कुछ नहीं भी हो सकती। यह आलेख इस मान्यता पर सवाल खड़े करता है और साथ-ही-साथ एक वैकल्पिक परिकल्पना प्रस्तुत करता है जिसमें सोचने को मनुष्य के जीवन में होने वाली एक सामान्य प्रक्रिया के रूप में देखा गया है। प्रस्तुत परिकल्पना यह भी दावा करती है कि याद करना, समझना और सीखना सोचने के ही अलग-अलग रूप हैं और यदि हम सोचने को सुनिश्चित कर पाएं तो याद करना, समझना और सीखना स्वयं हो जाएगा।

भाग-1

सोचने की बात करते हुए अलग-अलग लोग अलग-अलग मतलब निकालते हैं। इसका अनुमान सोचने की बात करते हुए इस्तेमाल किये जाने वाले शब्दों से लगाया जा सकता है - चिंतन करना, विचार करना, विश्वास करना, अनुमान करना, जानना, मानना, याद कर पाना, कल्पना करना, योजना बनाना, विश्लेषण करना, ध्यान देना, मत बनाना, आदि-आदि। इन शब्दों का अगर वर्गीकरण करने का प्रयास करें तो एक तरीके से इन्हें अतीत, वर्तमान और भविष्य में क्रमशः हो चुकी, हो रही या होने वाली क्रियाओं के तीन वर्गों में देखा जा सकता है। इनका एक अन्य तरह का वर्गीकरण इन क्रियाओं के करने/होने में लगने वाले समय के आधार पर किया जा सकता है - इनमें से कुछ जल्दी की जाती हैं, जबकि कुछ के करने में समय लगता है। इन क्रियाओं के होने/करने में लगने वाले समय के अंतर के बावजूद इनमें एक समानता है - ये सारी इंसान के द्वारा की जाने वाली मानसिक क्रियाएं हैं। इन क्रियाओं के होने या करने में मस्तिष्क (Brain) और दिमाग (Mind) की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लेकिन जैसे भोजन को पचाने में पाचन तंत्र की महत्वपूर्ण भूमिका होने के बावजूद हम यह नहीं कहते कि 'हमारा पाचन तंत्र खाना पचा रहा है', वैसे ही इन क्रियाओं के होने में मस्तिष्क और दिमाग की महत्वपूर्ण भूमिका होने के बावजूद हम यह नहीं कहते कि 'हमारा मस्तिष्क या दिमाग सोच रहा है'।

* यह लेख का पहला भाग है। दूसरे भाग के लिए अगला अंक देखें।

सोचने से जुड़े हुए इतने सारे शब्दों का होना सोचने के भिन्न-भिन्न रूपों के होने की ओर इशारा करता प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि अमूमन हम सोचने के इतने सारे रूपों में से कोई एक कर रहे होते हैं, परन्तु तय नहीं कर पाने कारण कह देते हैं कि 'मैं सोच रहा हूँ'। वैसे ही जैसे किसी वस्तु के बारे में तय नहीं कर पाने की परिस्थिति में हम 'चीज' शब्द का प्रयोग करते हैं - 'वह चीज जो टेबल पर पड़ी है'। सामान्यतः 'मैं अभी सोच रहा हूँ' जैसा वाक्य हम तभी इस्तेमाल करते हैं जब हम प्रत्यक्ष रूप से कोई अन्य कार्य जैसे बागवानी, दौड़ना, खाना बनाना, गीत सुनना आदि नहीं कर रहे होते हैं। इससे ऐसा लग सकता है कि सोचना और कोई अन्य काम करना साथ-साथ संभव नहीं हैं। ऊपर उदाहरण के लिए दिए गए कार्य करते हुए यदि कोई हमसे पूछे तो हम यही कहते हैं कि बागवानी कर रहे हैं, दौड़ रहे हैं, खाना खा रहे हैं, आदि। हम कभी नहीं कहेंगे कि सोच रहे हैं और बागवानी कर रहे हैं या सोच रहे हैं और दौड़ रहे हैं, या सोच रहे हैं और खाना खा रहे हैं; जबकि इन सभी कार्यों के करने में सोचना निहित है। विशेष परिस्थिति में यदि कोई मुझसे कहे कि 'तुम जो कार्य कर रहे हो उसके बारे में तुम्हें सोचना चाहिए', तो इसका यह अर्थ कतई नहीं होता है कि उस कार्य को करते हुए मैं सोच नहीं रहा हूँ। शायद वह व्यक्ति मेरा ध्यान उस कार्य के महत्त्व, उसकी गंभीरता या इसी तरह की किसी अन्य बात की तरफ आकृष्ट करना चाहता है।

परन्तु जब हम सोचने के सिवाय कोई अन्य कार्य नहीं कर रहे होते हैं तो आखिर कर क्या रहे होते हैं? ऐसा कहा जा सकता है उस समय हम अतीत में हो चुके या वर्तमान में हो रहे या भविष्य में होने वाले किसी कार्य की सजग रूप से एक सजीव मानसिक तस्वीर बनाकर उसको देख रहे होते हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि हम अनजाने में उन सभी कार्यों को मानसिक रूप से उतनी ही बारीकी से कर रहे होते हैं जैसा कि हुआ होगा, हो रहा होगा या होने वाला होगा। किसी कार्य को करना और उसके बारे में सोचना दो अलग-अलग कार्य हैं, परन्तु इनको एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। कोई भी कार्य बिना सोचे नहीं किया जाता और किसी कार्य को करने की कल्पना किये बगैर उसके बारे में सोचा नहीं जा सकता। दोनों में फर्क सिर्फ इतना है कि पहले को कोई दूसरा व्यक्ति देख सकता है जबकि दूसरे को नहीं। दूसरी तरह का सोचना दरअसल अतीत, वर्तमान या भविष्य में किसी कार्य को करने की कल्पना करना कहा जा सकता है - हालांकि सामान्यतः कल्पना सिर्फ भविष्य की ही की जाती है, अतीत को तो हम याद करते हैं और वर्तमान के बारे में सोचते हैं। शब्दों के इस फर्क को यदि थोड़ी देर के लिए नजरअंदाज कर दें, तो याद करना, सोचना और कल्पना करना एक-सी मानसिक क्रियाएं लगने लगती हैं।

सोचने के बारे में सोचना

सोचने के बारे में ऊपर की बातचीत से तो ऐसा लगता है कि सोचना एक जटिल कार्य है जिसको समझना और भी जटिल कार्य है। परन्तु ऐसा है नहीं। मनोवैज्ञानिकों या दार्शनिकों के लिए संभव है यह काफी जटिल हो, परन्तु शिक्षकों और शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े लोगों के लिए नहीं। हमारे लिए तो सोचना एक सामान्य मानवीय कर्म है। मनोवैज्ञानिक या दार्शनिक सोचने का अर्थ और उसकी प्रक्रिया को कर्ता से काटकर समझना चाहते हैं। उनके प्रश्न कुछ इस प्रकार के होते हैं - क्या सोचने के भिन्न-भिन्न रूपों, जिनके लिए अलग-अलग शब्दों का इस्तेमाल किया जाता है, उनके पीछे मष्तिष्क और दिमाग में भिन्न-भिन्न प्रक्रियाएं होती हैं? क्या यह अलग-अलग प्रकार से सोचना एक कौशल है जिसे शिक्षक द्वारा छात्रों को सिखाया जा सकता है? क्या अधिकतर लोग ठीक से सोचने में असफल होते हैं? आदि-आदि।

स्कूलों या स्कूली व्यवस्था और समाज में बच्चों के सोचने की गुणवत्ता पर काफी प्रश्न उठाये जाते हैं। उदाहरण के लिए एक छोटा बच्चा परीक्षा में कम अंक आने पर उत्तर पुस्तिका में पिता की जगह स्वयं हस्ताक्षर कर स्कूल में लौटा देता है। पकड़े जाने पर उससे पूछा जाता कि 'तुमने ऐसा करने के पहले सोचा नहीं था?' बच्चा कहता है कि 'उसने सोचकर ही यह कार्य किया था। यदि मैं उत्तर पुस्तिका पिताजी के पास ले जाता तो मुझे डांट पड़ती या पिटाई भी होती। इससे बचने के लिए मैंने ऐसा किया था।' ऐसे में यह माना जाता है कि उसके सोचने की गुणवत्ता कम है, या उसके सोचने में कुछ परेशानी है। - अभिभावक/माता-पिता शिकायत करते हैं कि उनके बच्चों को उतनी अच्छी तरह

से नहीं पढ़ाया जा रहा है जितनी अच्छी तरह से उन्हें पढ़ाया गया था। शायद वो चाहते हैं कि स्कूलों में कुछ ऐसा शिक्षण होना चाहिए जिससे उनके बच्चे बेहतर तरीके से सोचने लगे। मनोवैज्ञानिकों ने तो सोचने के जटिल सिद्धांत और सोचना सिखाने के तरीके प्रस्तावित कर दिए हैं। उनके विचार से अलग-अलग तरह से सोचने में अलग-अलग मानसिक प्रक्रिया होती है, और उसको सीखने-सिखाने के अलग-अलग तरीके होते हैं - उदाहरण के लिए Discovery learning, Inquiry learning, Critical thinking, Lateral thinking, Higher order thinking/learning इत्यादि।

सोचने के भिन्न-भिन्न अर्थ और प्रयोग सामान्य बात है। यह भाषा की समस्या या कमजोरी की बजाय उसकी समृद्धि को दर्शाता है। सोचने की एक सर्वमान्य परिभाषा गढ़ने की बजाय हमें यह समझने की कोशिश करनी चाहिए कि किस संदर्भ में सोचने का प्रयोग किस अर्थ में हो रहा है। परिभाषाएं अर्थ संकुचन का कारण बन सकती हैं। सटीक होने की कोशिश में परिभाषाएं स्पष्टता की बलि चढ़ा देती हैं (Popper, 1976)। ऐसे में यदि हम अलग-अलग तरह के सोचने में मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं (psychological processes) तथा शब्दार्थ संबंधी (semantic) फर्क को अलग-अलग देखने की कोशिश करें तो शायद मदद मिलेगी। दूसरे शब्दों में कोई 'व्यक्ति' क्या कर रहा है और उसका 'दिमाग' क्या कर रहा है इसको अलग-अलग देखने की कोशिश करें - हालांकि इन दोनों को अलग कर पाना इतना सरल भी नहीं है। अब यह कहा जा सकता है कि जो कुछ भी दिमाग कर रहा है उसे सोचना कहते हैं, फिर चाहे वह आदतन (ऐच्छिक क्रियाएं जो जटिल न हों लम्बे समय के प्रयास के बाद आदत का हिस्सा बन जाती हैं और ऐसा लगता है कि इसमें सोचने की जरूरत नहीं होती। लेकिन इन क्रियाओं के करने में शुरुआती दौर में तो सोचना शामिल था। अब वो सोचना हमारे लिए इतना सहज हो गया है कि हम उसके प्रति सजग नहीं होते। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम सोच नहीं रहे, जैसे हम सांस लेने के प्रति सजग नहीं होते लेकिन इसका अर्थ यह नहीं होता कि हम सांस नहीं ले रहे।) कर रहा हो, अनजाने में कर रहा हो, या सचेत रूप से कर रहा हो।

'यह बिना सोचे-समझे कुछ भी करता रहता है।' 'यह काम थोड़ा खतरनाक है, शुरू करने से पहले सोच लेना।' 'सोचने की जरूरत नहीं है, तुम तो ऐसे ही करते जाओ और सफल हो जाओगे।' आमतौर पर बच्चों और कभी-कभी बड़ों के बारे में कही जाने वाली इन बातों से लगता है कि हम कभी तो सोचते हैं और कभी नहीं। या हमारा दिमाग कभी तो सोचता है और कभी नहीं। परन्तु सच तो यह है कि हमारा दिमाग हर समय सोचता ही रहता है। शायद ऐसा कोई समय दूढ़ना मुश्किल होगा जब इंसानी दिमाग वर्गीकरण करना, अनुमान लगाना, समस्याओं के समाधान दूढ़ना, निर्णय लेना जैसे कार्य नहीं कर रहा हो जिनमें सोचना निहित है। सोचने की स्थिति तो हमारे दिमाग की सामान्य स्थिति है। शिक्षा के क्षेत्र में दिमाग को एक सूचना प्रक्रम यंत्र (information processing device) की तरह देखने की वजह से सीखने का मतलब सूचना प्राप्त करना, याद करने का मतलब हासिल की गई सूचना की पुनः प्राप्ति करना, और सोचने का मतलब उस सूचना की मदद से कोई काम कर पाना या निकाल पाना समझा जाने लगा है। परन्तु सूचनाओं को प्राप्त करना, याद रखना और उनका इस्तेमाल करना हमारे दिमाग का मुख्य कार्य नहीं है; यह तो दिमाग के मुख्य कार्य का उपोत्पाद (by product) है। यदि कोई उद्दीर्ष्य अपने मुख्य उत्पाद पर ध्यान देने की बजाय अपना सारा ध्यान उपोत्पाद पर देने लगे तो उसके उद्दीर्ष्य के भविष्य की आप कल्पना कर सकते हैं। छात्रों, अभिभावकों, शिक्षकों और वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की परेशानी की जड़ में यह एक मुख्य बात लगती है। दिमाग के मुख्य कार्य - अनुभव ग्रहण करना - की बजाय हमारा सारा जोर उपोत्पाद - सूचना प्राप्त करना, उसको याद रख पाना और उसका इस्तेमाल कर पाना - पर केन्द्रित हो गया है। ऐसे में वही परिणाम सामने आ रहे हैं जिनकी आशंका हो सकती है - अनुभवों के अभाव में सूचनाओं का प्राप्त होना, टिकना और उनका इस्तेमाल कर पाना कठिन से कठिनतर होता जा रहा है। यदि मुख्य कार्य ही नहीं होगा तो उपोत्पाद कहां से आएंगे?

दिमाग का मुख्य कार्य तो अनुभव ग्रहण करना है जिसकी वजह से सोचना संभव हो पाता है। अनुभव शब्द का प्रयोग आम जीवन में अलग-अलग अर्थों में किया जाता है, लेकिन अनुभव शब्द का प्रयोग इस आलेख में एक तकनीकी पद

के रूप में किया जा रहा है। इन्द्रियों द्वारा प्राप्त बोध अनुभव की श्रेणी में नहीं आता। इन्द्रियां जो संकेत मष्तिष्क को भेजती हैं उसे भी हम अनुभव नहीं मान सकते। मष्तिष्क में पैदा होने वाले स्नायु आवेग जो दिमाग या चेतना को संकेत भेजते हैं वो भी अनुभव नहीं हैं। अनुभव तो वह तब बनता है जब दिमाग अपने पूर्व-अनुभवों का इस्तेमाल करते हुए इन नए स्नायु आवेगों से अर्थ निर्माण करता है। अनुभव इस प्रकार एक सजग और अर्थपूर्ण प्रक्रिया है। हम लगातार जिस दुनिया में रहते हैं उसमें होने वाली घटनाओं के बारे में सोचते रहते हैं। हम अतीत में हो चुकी और भविष्य में होने वाली चीजों के बारे में भी सोचते हैं। हमारी आज की दुनिया का मतलब ही हमें अतीत के आईने और भविष्य के चश्मे से समझ में आता है जोकि लगातार सोचते रहने से ही संभव है। सोचने की इस निरंतर चलती रहने वाली प्रक्रिया पर हमारे ध्यान नहीं देने का यह मतलब नहीं होता कि हम सोचते नहीं हैं। जब हमें लगता है कि हम सोचने की बजाय कुछ और कर रहे हैं, तब भी हम सोचते ही होते हैं। यदि हम सड़क पर चलते हुए किनारे खड़े पेड़ों से नहीं टकराते हैं तो यह बिना सोचे संभव नहीं है। और यदि हम किसी पेड़ से टकरा ही जाएं, तो इसका मतलब यह होता है कि हम उस समय सड़क पर चलने के बारे में सोचने की बजाय किसी और चीज के बारे में सोच रहे होते हैं। आदतन हम कई बार ऐसे कार्य कर देते हैं जिन पर हमें बाद में पश्चाताप होता है। इस तरह के कार्यों के करने/होने के लिए भी कोई न कोई सोच जिम्मेदार होती है जो बाद में हमें ठीक नहीं लगती। यूँ कहें तो, हमारी सोच हमें सही या गलत लग सकती है, पर हमारा सोचना शायद सोने के अलावा कभी बंद नहीं होता। जब हम यह कहते हैं कि 'माफ करना मैंने सोचा नहीं था कि यह तुम्हें बुरा लगेगा'; उस समय दरअसल हम यह कह रहे होते हैं कि 'मैंने सोचा था कि तुम्हें बुरा नहीं लगेगा, या अच्छा लगेगा'।

सोचना और निर्णय लेना

यदि सोचने की प्रक्रिया को हम थोड़ी देर के लिए रोक सकें, जो कि संभव नहीं है, तो हमें इन्द्रिय-बोध तो होंगे पर जगत-बोध नहीं होगा। इन्द्रियों और मष्तिष्क के माध्यम से जो हमें प्राप्त होता है वह स्नायु आवेग (neural impulse) होता है। इन आवेगों के आधार पर दिमाग को बाहरी जगत की एक तस्वीर बनानी होती है जो सोचने के बिना संभव ही नहीं है क्योंकि दिमाग के पास कोई आंख, नाक या कान तो होता नहीं। हमारा दिमाग लगातार इस काम को इतनी सहजता और सटीक तौर पर करता रहता है कि हम इसकी ओर ध्यान ही नहीं देते हैं। कभी-कभी हमारा दिमाग गलती भी करता है और हम मृग-मरीचिका को पानी समझ लेते हैं।

हमारा दिमाग बिना किसी खास प्रयास के निरंतर योजनाएं बनाता रहता है, अनुभवों और सूचनाओं का अलग-अलग तरह से वर्गीकरण कर उनको व्यवस्थित करता रहता है, अनुमान लगाता रहता है, निर्णय लेता रहता है, और समस्याओं का समाधान करता रहता है। इन सारी प्रक्रियाओं के बिना एक छोटे बच्चे के जीवन की भी कल्पना मुश्किल लगती है। कैसे तय करते हैं बच्चे कि कब उन्हें बोलना है और कब चुप रहना है? कैसे जान पाते हैं कि कौन मित्र है और कौन नहीं? ऐसे में बच्चों के बारे में यह कहना कि 'वे सोच नहीं पाते, सोचते नहीं या ठीक से नहीं सोचते हैं' कितना ठीक लगता है? बच्चों या बड़ों के ठीक से नहीं सोच पाने का कारण जानकारी का अभाव या जल्दबाजी में किसी गलत मान्यता को आधार बना लेना होता है न कि किसी प्रकार की मानसिक अक्षमता। बच्चे या बड़े भी उन परिस्थितियों में ठीक से सोचकर कोई निर्णय नहीं ले पाते हैं जब उनके पास जानकारी का अभाव हो, या लिए जाने वाले निर्णय का हमारे जीवन पर कोई अत्यंत ही गंभीर प्रभाव पड़ने वाला हो। उदाहरण के लिए मेरे जैसा कोई व्यक्ति खगोल भौतिकी (astrophysics) से जुड़ी बातों के बारे में ठीक से नहीं सोच पाएगा। लेकिन इसकी वजह मेरे सोचने की क्षमता में कोई कमी होने की बजाय मेरे ज्ञान का अभाव होगा। वैसे ही, यदि आज मुझे यह तय करना हो कि मैं अपनी सारी जमा पूंजी भविष्य में होने वाले लाभ की आशा में एक जमीन के टुकड़े को खरीदने में लगाऊँ या नहीं तो ठीक से सोच कर निर्णय ले पाना मेरे लिए काफी मुश्किल होगा। शायद मैं कोई निर्णय ही ना ले पाऊँ और तब तक कोई दूसरा व्यक्ति उस जमीन के टुकड़े को ले जाए। परन्तु इसका कारण मेरे सोच पाने की क्षमता में कमी की बजाय निर्णय के होने वाले गंभीर परिणाम होंगे।

सोचना और समस्या-समाधान

सोचने को हम अपने दैनिक जीवन में लगातार चलती रहने वाली समस्याओं के समाधान के रूप में भी देख सकते हैं। उदाहरण के लिए, यदि भाषा सीखने की बात करें तो इसकी प्रक्रिया में बच्चे लगातार समस्याओं का समाधान करते हैं। हम शायद ही कभी छोटे बच्चों को शब्दों का अर्थ या वाक्य-विन्यास (syntax) के नियम बताते हैं। हम तो संदर्भों में उन शब्दों या वाक्यों का प्रयोग भर कर देते हैं और शेष बच्चों पर छोड़ देते हैं। वे स्वयं ही परिकल्पनाएं बनाकर और उनको बार-बार संशोधित कर इन समस्याओं का समाधान करते हैं (Chomsky, 1959; Kuhn, 1989; Piaget 1926 & 1959)।

कुछ लोग समस्या समाधान को एक अलग तरह के सोचने की श्रेणी में रखते हैं। उनका मानना है कि समस्याओं के समाधान के लिए एक सामान्यीकृत कौशल की आवश्यकता होती है जिसे सिखाया जा सकता है और जिसको सीख लेने के बाद व्यक्ति किसी भी तरह के समस्या का समाधान कर सकता है। परन्तु समस्याएं तो अलग-अलग तरह की होती हैं। एक ही तरीके से दो अलग-अलग समस्याओं का समाधान कैसे संभव है? एक ही परिस्थिति किसी के लिए समस्या हो सकती है और किसी के लिए नहीं। पानी की भरी हुई बाल्टी उठाना एक छोटे बच्चे के लिए समस्या हो सकती है पर आपके लिए नहीं। बिजली के तार जोड़ने, कम्प्यूटर फॉर्मेटिंग करने, छोटे बच्चे को भिन्न सिखाने, शतरंज खेलने और शहर में एक जगह से दूसरी जगह का रास्ता ढूंढने के लिए अलग-अलग तरह के ज्ञान और कौशल की आवश्यकता होगी। इन सबका समाधान करने की क्षमता किसी सामान्यीकृत कौशल को सिखा कर कैसे विकसित की जा सकती है? हां, इन सारी समस्याओं के समाधान के लिए सोचना अवश्य पड़ेगा। परन्तु सोचने की क्षमता तो एक सामान्य मानवीय क्षमता है जो हम सबके पास होती है। फिर समस्या-समाधान को एक अलग श्रेणी में रखने की क्या जरूरत है? जैसे हम मानव जीवन में आने वाली समस्याओं की कोई एक श्रेणी नहीं बना सकते, उसी तरह हम इनके समाधान की भी कोई एक श्रेणी न तो बना सकते हैं और ना ही सिखा सकते हैं।

सोचना और तर्क करना

निर्णय लेने या समस्याओं के समाधान करने की ही तरह तर्क करने (reasoning) या तर्कपूर्ण ढंग से सोचने को भी एक अलग प्रकार के सोचने के रूप में देखा जाता है और इसे सीखने-सिखाने के विशेष तौर-तरीकों की आवश्यकता पर बल दिया जाता है। आमतौर पर तर्क का सजग इस्तेमाल हम अपने निर्णयों या निष्कर्षों को सही ठहराने के लिए करते हैं। किसी अन्य व्यक्ति को अपने विचारों से सहमत करने के लिए भी हम तर्क का ही सहारा लेते हैं। तकनीकी रूप से कहें तो तर्क की मदद से हम विचारों और कर्मों के बीच एक मजबूत रिश्ता बनाने की कोशिश करते हैं। परन्तु तर्क करने को सिर्फ सह-संबंध (association) स्थापित करने के रूप में नहीं समझा सकता है। तर्कपूर्ण सहसंबंधों का व्यावहारिक और विश्वसनीय होना भी आवश्यक है।

अगर तर्क करने को इस प्रकार देखें तो यह कहना मुश्किल हो जाता है कि इसका कोई सामान्यीकृत रूप या सिद्धांत हो सकता है। अलग-अलग क्षेत्र में तर्क कर पाने की क्षमता संबंधित क्षेत्र में हमारी जानकारी पर निर्भर करेगी। किसी पारिवारिक समस्या, राष्ट्र की आर्थिक समस्या, या कृषि से जुड़ी हुई समस्या के बारे में व्यावहारिक और विश्वसनीय रूप से तर्क हम तभी कर पाएंगे जब हमारे पास संदर्भों से संबंधित ज्ञान हो। अक्सर यह भी होता है कि एक ही घटना के आधार पर दो व्यक्ति तर्कपूर्ण ढंग से अलग-अलग निष्कर्षों पर पहुंचते हैं। विपक्षी दलों के राजनेताओं के उदाहरण हमें समझने में मदद करेंगे। सच तो यह है कि, वो तर्क की मदद से अपने वैचारिक या राजनैतिक पूर्वाग्रहों को सही साबित कर रहे होते हैं। जब हम किसी के तर्क से असहमत होते हैं तो कह देते हैं कि वह तर्कपूर्ण ढंग से नहीं सोच रहा है। अगर देखें तो तर्क करना एक सामान्य-सी प्रक्रिया है जो इंसान लगातार करता रहता है। हम अगर सब्जी मंडी जाते हैं तो उसके पीछे भी तर्क होता है। और जब हम सब्जी मंडी से बिना कुछ खरीदे लौट आते हैं तो उसके पीछे भी तर्क होता है। विश्वास नहीं होता तो किसी से पूछ कर देखें जिसने ऐसा किया हो।

स्कूली शिक्षा से एक आम शिकायत यह है कि वह बच्चों को तर्कपूर्ण ढंग से सोचना नहीं सिखा पाती है। परन्तु यदि हम तर्क की ऊपर बनी समझ के संदर्भ में देखें तो यह बात ठीक नहीं लगती। यह हो सकता है कि बच्चे शास्त्रीय तरीके से तर्क (logical thinking) न कर पाएं (सभी 'अ' 'ब' हैं; सभी 'ब' 'स' है; अतः कुछ 'स' 'अ' हैं)। परन्तु जीवन से जुड़ी समस्याओं को सुलझाने के लिए इस प्रकार के शास्त्रीय तर्क परेशानी का कारण बन सकते हैं। जीवन कोमन सेंस और मूल्यों से संचालित होता है जबकि शास्त्रीय तर्क कम्प्यूटर की तरह कोमन सेंस और मूल्य विहीन होते हैं। मानवीय समाज के धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक विवाद अलग-अलग मूल्यों की वजह से होते हैं न कि तर्क-क्षमता के आभाव की वजह से।

उच्च-स्तरीय सोच

स्कूली शिक्षा में उच्च-स्तरीय सोच (higher order thinking) का आभाव एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में चिन्हित किया जाता है। यह पद (phrase) आम बातचीत की बजाय शिक्षाविदों और मनोवैज्ञानिकों की बातचीत में अधिक मिलता है। इसकी कोई ऐसी विशेषता जो इसे सामान्य सोच से अलग करती हो या इसकी कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं मिलती। इस तरह के विचार का एक श्रोत बेंजामिन ब्लूम (1956) के संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के व्यवहारवादी वर्गीकरण में दिखाई पड़ता है जहां उद्दीपन-प्रतिक्रिया (stimulus-response) पदानुक्रम में सबसे नीचे रखी गई है जबकि मूल्यांकन और अनुप्रयोग (evaluation and application) सबसे ऊपर। इससे जुड़ी बातों को यदि ध्यान से देखें तो ऐसा लगता है कि उच्च-स्तरीय सोच के अस्तित्व में विश्वास करने वाले विद्वानों की दो मान्यताएं हैं- पहली तो यह कि सोचने के भिन्न-भिन्न प्रकार होते हैं, और दूसरी यह कि उनका कोई पदानुक्रम बनाया जा सकता है। सामान्य समझ यह बनती है कि उच्च-स्तरीय सोच सोचने का सबसे प्रभावशाली रूप है जिसे सभी लोगों की बजाय कुछ लोग ही कर सकते हैं। इस तरह की समझ सोचने के एक अभिजात्य तरीके की स्थापना करती है। यह ना सिर्फ सोचने के अलग-अलग तरीकों की बात कर उनमें भेद करती है, बल्कि उच्च और निम्न सोच जैसी अवधारणा को भी बल देती है। समाज में किये जाने वाले अन्य भेद-भावों की तरह इसका आधार भी पूर्णतः काल्पनिक है। आज तक किसी भी शोध द्वारा उच्च और निम्न-स्तरीय सोच का अस्तित्व सिद्ध नहीं हो पाया है (Smith, 1992)।

इन सब आपत्तियों के बावजूद मान्यता ऐसी दिखती है कि निम्न-स्तरीय सोच हमारे दिमाग की सामान्य स्थिति है जिसके उदाहरण आम जीवन में देखने को मिलते हैं। इस तरह की सोच बिना किसी विशेष प्रयास के आदतन होने वाली प्रक्रिया है। जबकि उच्च-स्तरीय सोच में उच्च श्रेणी के मूल्य जैसे योजना बनाना, कल्पना करना, अनुमान लगाना, मूल्यांकन करना, विश्लेषण करना, संश्लेषण करना आदि शामिल हैं। उच्च श्रेणी की सोच के साथ अक्सर नेतृत्व की क्षमता को भी संबद्ध कर लिया जाता है। इन सब के आधार पर एक ऐसी समझ बनती जा रही है कि उच्च-स्तरीय सोच की प्रक्रिया अधिक जटिल और गूढ़ होती है, जिसके लिए विशेष ध्यान और बेहतर मष्तिष्क की जरूरत होती है। यह समझ एक-दूसरे स्तर पर भेद करती दिखाई देती है - कुछ लोग ही इस तरह से सोच पाने में सक्षम होते हैं और वो अन्य लोगों से बेहतर होते हैं।

यदि थोड़ा रुक कर सोचें तो उच्च-स्तरीय सोच के तत्व सामान्य सोच से अलग नहीं दिखाई पड़ते। उच्च-स्तरीय सोच मुश्किल इसलिए हो जाता है क्योंकि इसे संदर्भों से काटकर किसी जांच प्रक्रिया का हिस्सा बना दिया जाता है। इस जांच परीक्षा में बेहतर सोचने की बजाय भाषा तथा जांचकर्ता की अपेक्षाओं की बेहतर समझ अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। रोजमर्रा के जीवन में हम लगातार योजना बनाते हैं, कल्पना करते हैं, विश्लेषण करते हैं, तुलना करते हैं, मूल्यांकन करते हैं, चयन करते हैं, आदि। हां, यदि इस पूरी प्रक्रिया को किसी को बताना हो तो हमें लिखने या बोलने की भाषाई कौशल की आवश्यकता होगी। यदि कोई व्यक्ति इसे शब्दों में व्यक्त नहीं कर पा रहा है तो इसे भाषाई कौशल की समस्या की तरह देखा जाना चाहिए न कि सोचने की समस्या की तरह।

संज्ञानात्मक और परा-संज्ञानात्मक (cognitive and metacognitive) सोच

एक भेद संज्ञानात्मक और परा-संज्ञानात्मक सोच में भी किया जाता है। संज्ञानात्मक सोच में हमारा ध्यान किसी बाहरी वस्तु, व्यक्ति या घटना पर होता है, जबकि परा-संज्ञानात्मक सोच में स्वयं का संज्ञान ही सोच की विषयवस्तु होता है। अपने विचारों को भौतिक रूप से देख पाना तो हमारे लिए संभव ही नहीं है। क्या ऐसा नहीं है कि संज्ञानात्मक सोच में हम किसी वस्तु, व्यक्ति या घटना के साथ हमारी अन्तःक्रिया के दौरान उपजे विचारों के बारे सोचते हैं, जबकि परा-संज्ञानात्मक सोच में हमारी पहली सोच से उपजे विचारों के बारे सोचते हैं? यदि यह सच है तो फिर दोनों ही तरह के सोच में हम विचारों के बारे में सोच रहे होते हैं। फिर इनके बीच भेद किस आधार पर करें?

इस बातचीत में यह सवाल अक्सर आता है कि यदि दोनों तरह का सोचना एक-सा ही है, तो फिर एक दूसरे की तुलना में मुश्किल क्यों होता है? क्यों कुछ लोग वस्तु, व्यक्ति या घटनाओं के बारे में तो सोच लेते हैं परन्तु वैचारिक सवालों के उत्तर देने में असफल होते हैं? इसके दो कारण समझ में आते हैं। पहला तो यह कि एक प्रकार का सोचना हमारे दैनिक जीवन के अभ्यास का हिस्सा है जबकि दूसरे प्रकार का सोचना पूर्णतया कृत्रिम है जिसके लिए अभ्यास की आवश्यकता होगी। दूसरा, इसमें भाषाई कौशल भी महत्वपूर्ण होगा क्योंकि इसे या तो बोलकर या लिखकर व्यक्त करना होता है। तो क्या हम अभ्यास की कमी या भाषाई कौशल के अभाव में किसी को सोचने में अक्षम करार देंगे?

यदि इस चर्चा को पूरा करें तो कह सकते हैं कि सोचना इंसानी दिमाग की एक सामान्य प्रक्रिया है जो लगातार चलती रहती है। अलग-अलग लोगों के सोचने में फर्क प्रक्रिया में अंतर के कारण होने की बजाय उनके मूल्यों, मान्यताओं और प्राथमिकताओं में अंतर की वजह से होता है। विषयवस्तु की जानकारी, प्रक्रिया का अभ्यास, और भाषाई कौशल भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परन्तु इनके आधार पर यह कहना संभव नहीं है कि किसी एक प्रकार का सोचना दूसरे प्रकार के सोचने से बेहतर होता है, या कुछ लोग एक प्रकार से तो सोच सकते हैं पर दूसरे प्रकार से नहीं। इस आलेख का अंत कबीर की एक साखी से करना उपयुक्त लगता है:

एकहि साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।

माली सींचे मूल को, फूले फले अघाय।। ◆

लेखक परिचय : दिगन्तर की अकादमिक संदर्भ इकाई में समन्वयक के पद कार्यरत हैं।

संपर्क : 9660660661; kumarrajeshdigantar@gmail.com